बुद्धवर्ष २५५०, माघ पूर्णिमा, २ फरवरी, २००७ वर्ष ३६ अंक ८

वार्षिक शुल्क रु. ३०/-
आजीवन शुल्क रु. ५००/-

Hindi Patrika on Website: www.vri.dhamma.org/NewslettersHindi/index.html

धम्मवाणी

जातिधम्मो जरा धम्मो ब्याधिधम्मो च'हं तदा।
अजरं अमरं खेमं परियेसिस्सामि निब्बुतिं॥
– बुद्ध वंस २८.

यह जो जातिधर्मा, जराधर्मा और ब्याधिधर्मा है, उससे निवृत्त होकर जो अजर अमर और क्षेमपूर्ण है, मैं उसकी खोज में लगूंगा।

पुक्कुसाति कथा–(२)

चला त्याग कर राज्यसुख

बिंबिसार ने यह पत्र रत्नखचित स्वर्ण-मंजूषा में रख कर उसे एक के ऊपर एक ,दस बहुमूल्य पेटियों में बंद करवाया और लाख की चपड़ी लगा राज्य-मुहर से सील-बंद किया। फिर उसे मूल्यवान वस्त्रों से सुसज्जित मंगल हाथी के हौदे पर स्थापित किया और राजकीय श्वेतछत्र से आच्छादित कर एक श्वेतकेतु सैनिक टुकड़ी सहित गाजे-बाजे के साथ तक्षशिला की यात्रा के लिए प्रस्थान करवाया।

रास्ते पर छिड़काव करवा कर बालू बिछवायी। दोनों ओर मांगलिक वंदनवारें तथा स्वच्छ पानीभरे कलश रखवाये और अपने नगर की सीमा तक स्वयं साथ-साथ पैदल गया। इसके आगे की यात्रा के लिए संदेश-वाहकों को आदेश दिया कि धर्मरत्न की यह अनमोल भेंट तक्षशिला तक अत्यंत सम्मानपूर्वक ले जायी जाय और वहां पहुँचने पर मेरे मित्र को मेरी ओर से यह संदेश दिया जाय कि इसे किसी एकांत स्थान में आदरपूर्वक खोल कर देखे।

पुक्कुसाति ने अपना उपहार जनसम्मुख खोले जाने का संदेश भेजा था, ताकि जनता पर दोनों राजाओं की मित्रता की गहरी छाप पड़े। परंतु बिंबिसार अपनी भेंट अकेले में खोले जाने का संदेश भेजता है। बिंबिसार जानता है कि पुक्कुसाति के पास पूर्व-जन्मों की पुण्य-पारमी होगी तो धर्म का यह संदेश पढ़ कर राज्य त्यागने की बात सोचेगा और ऐसी अवस्था में परिवार और राज्यशासन व नगर के अन्यान्य उपस्थित लोग उसके उत्साह को शिथिल करने का प्रयत्न करेंगे। अतः उसके लिए एकांत ही कल्याणकारी होगा।

हजारों मील की लंबी यात्रा पूरी करता हुआ यह शाही कारवां जब गंधारदेश की सीमा पर पहुँचा तो पुक्कुसाति ने अपने अमात्यों को भेज कर इस राज्य-उपहार की समुचित अगवानी करवायी और तक्षशिला तक की यात्रा बड़ी धूमधाम के साथ ससम्मान पूरी करवायी। राजनगरी तक्षशिला की सीमा पर स्वागत के लिए पुक्कुसाति स्वयं पहुँचा और जुलूस के साथ राजमहल तक पैदल चल कर आया।

मित्र बिंबिसार के सुझाव के अनुसार उसने यह अनमोल पिटारी राजमहल के एकांत कक्ष में पहुँचायी और द्वार पर एक प्रहरी बैठा कर अकेले में स्वयं अपने हाथों **उपहार की पिटारी खोली**। लाख की राज्य मुहर तोड़ कर पेटी में से पेटी निकालते हुए, अंत में रत्नखचित स्वर्ण-मंजूषा निकाली और उसे खोल कर गोल लपेटे गये लंबे स्वर्ण-पत्र को अत्यंत आदरपूर्वक बाहर निकाला।

"मेरे मित्र ने मेरे लिए धर्म का यह अनमोल उपहार भेजा है जो मध्यदेश जैसी पावन भूमि में ही उपजता है। यहां मिलना असंभव है।" अतः बड़ी भावभीनी श्रद्धा के साथ स्वर्णपत्र को खोल कर पढ़ने लगा। देखूं, मेरे मित्र का क्या धर्म-संदेश है?

पहली ही पंक्ति थी – **इध तथागतो लोके उप्पन्नो** ।

– यहां लोक में तथागत उत्पन्न हुए हैं।

क्या सचमुच संसार में तथागत बुद्ध उत्पन्न हुए हैं! क्या सचमुच मैं बुद्धकाल में जन्मा हूं! इस चिंतन मात्र से उसके मन में प्रसन्नता का एक प्रबल प्रवाह फूट पड़ा। और फिर जब आगे,

"इतिपि सो भगवा... आदि" इन शब्दों में भगवान के गुणों का वाचन किया तो पढ़ते-पढ़ते शरीर के ११ हजार रोमकूप उत्थापित हो उठे। सारा मानस पुलकित हो गया। सारा शरीर रोमांचित हो गया। कुछ देर इसी प्रसन्नताविभोर अवस्था में सुध-बुध खोये रहा। यह भी होश न रहा कि मैं बैठा हूं या खड़ा हूं। आगे की पंक्तियां पढ़ ही न सका। यों भावविभोर अवस्था में बहुत-सा समय बीत जाने के बाद जब भावावेश कुछ कम हुआ तो आगे पढ़ना शुरू किया। आगे शुद्ध धर्म के गुणों की व्याख्या थी।

"स्वाक्खातो भगवता धम्मो... आदि" पढ़ते-पढ़ते फिर तन-मन उसी प्रकार पुलकन-सिहरन से भर उठे। फिर तीव्र भावावेश जागा। फिर कई देर तक सुध-बुध खोये रहा। कुछ समय बाद मन शांत हुआ तो आगे संघ के गुणों की पंक्तियां पढ़ीं –

"सुप्पटिपन्नो भगवतो सावक सङ्घो... आदि" तो फिर वही दशा हुई। तदनंतर पत्र के चतुर्थ भाग को पढ़ने लगा तो उसमें आनापान साधना का विवरण था, जिसे पढ़ते-पढ़ते चित्त और शरीर में आनंद की ऐसी धाराप्रवाह अनुभूति होने लगी कि सहज ही चित्त एकाग्र हो गया। समाधिस्थ हो गया। अनेक जन्मों की पुण्य-पारमिताओं का संग्रह था, अतः चित्त तत्काल प्रथम ध्यान समापत्ति में समाहित हो, अल्पकाल में ही प्रथम से द्वितीय, द्वितीय से तृतीय और तृतीय से चतुर्थ ध्यान समापत्ति में गहनतापूर्वक समाधिस्थ हुआ। बाहरी आलंबनों का जरा भी भान नहीं रहा। यह अवस्था देर तक चली। यद्यपि अभी विपश्यना की ऊंची अवस्थाएं नहीं प्राप्त हुई थीं, परंतु चौथी ध्यान-समापत्ति का धर्म-रस ही इतना अपूर्व था कि बार-बार उसी के अभ्यास में लगा रहा और उसके रसास्वादन में दो सप्ताह

बिता दिये। कक्ष के द्वार पर पहरेदार बैठा था। केवल एक व्यक्तिगत सहायक के अतिरिक्त अन्य किसी का प्रवेश निषिद्ध था। १५ दिनों तक देश का राजा न राजमहल के रनिवास में गया और न राजदरबार में, न न्यायालय में और न ही सेनालय में। राज्य के प्रमुख लोगों को चिंता होने लगी कि हमारे राजा को ऐसा क्या उपहार मिला है, जिससे कि वह इस प्रकार वशीभूत हो गया है?

चतुर्थ ध्यान समापत्ति के शांति-रस की स्वानुभूति से प्रभावित हुए राजा पुक्कुसाति को अपने मित्र के अंतिम बोल याद आये। सचमुच मुझे राज्य त्याग कर तुरंत अभिनिष्क्रमण कर देना चाहिए। मेरा सद्भाग्य है कि इसी समय देश में बुद्ध उत्पन्न हुए हैं। उनके सान्निध्य में रह कर भवभ्रमण के दुःखों से सर्वथा विमुक्त कर देने वाली विपश्यना-विद्या सीख कर मुझे अपना मनुष्य-जीवन सार्थक कर लेना चाहिए। न जाने जीवन थोड़ा ही बचा हो। महान उपकार है मेरे मित्र का, जिसने मुझे ऐसी कल्याणी सूचना भिजवायी।

यों जीवन्मुक्त अरहंत होने के उद्देश्य से भगवान बुद्ध के बताए मार्ग पर चलने के लिए राजपाट, घरबार त्यागने का दृढ़ निश्चय किया। अपने हाथों कृपाण से शीश और दाढ़ी-मूंछ के केश काटे और सहायक से दो काषाय वस्त्र मँगवाये। एक को अधोवस्त्र बना कर पहना, दूसरे को ऊर्ध्व वस्त्र बना कर ओढ़ा। मिट्टी का एक भिक्षा-पात्र और लकड़ी का एक दंड भी मँगवाया। इन्हें हाथ में ले कर महल के नीचे उतर आया।

राजपरिवार के लोग उसे इस वेष में नहीं पहचान पाये। समझा कोई संन्यासी राजा से मिलने आया होगा और अब लौट रहा होगा। राजदरबार के राजपुरुष भी उसे नहीं पहचान पाये। परंतु जब निजी सहायक ने सारी स्थिति स्पष्ट की तो रनिवास और दरबार में कुहराम मच गया। दावानल की भांति यह सूचना सारे नगर में फैल गयी। पुक्कुसाति जैसे प्रजावत्सल राजा के राज्यत्याग की सूचना ने सारी प्रजा को दुःखसागर में डुबो दिया। प्रजा पर अनभ्र वज्रपात हुआ। शोक-निमग्न रोते-बिलखते हुए नगरनिवासी, राज्य के शासनाधिकारी और राजपरिवार के लोग भिक्षु वेशधारी पुक्कुसाति के पीछे हो लिये। लोगों ने क्रंदन करते हुए कहा –महाराज, आपके बिना हम अनाथ हो जायेंगे।

पुक्कुसाति ने सान्त्वना-भरे शब्दों में कहा –यहां अनेक योग्य व्यक्ति हैं जो मेरी अनुपस्थिति में राज्य-प्रशासन के दायित्व को अत्यंत कुशलतापूर्वक निबाहेंगे।

मंत्रियों ने उसे समझाने की चेष्टा की –महाराज, मध्यदेश के राजा बड़े मायावी होते हैं। कुटिल होते हैं। उनकी कूटनीति, छल-छद्म से परिपूर्ण होती है। कौन जाने लोक में सम्यक संबुद्ध उत्पन्न हुए भी हैं या नहीं? हो सकता है कि यह सब प्रवंचना हो। आप को राज्यच्युत करवा कर गंधार देश को दुर्बल बना दिया चाहता हो, ताकि समय पा कर उसे हड़प ले।"

नहीं, मंत्रियों, मेरे परम मित्र के प्रति ऐसा शक-संदेह न करो। मगध का राज्य गंधार देश से बहुत दूर है। बीच में कोशल, कौशांबी, चेदिय, पांचाल, कुरु जैसे शक्ति-संपन्न जनपद हैं। उनका अतिक्रमण कर के गंधार देश को हथिया लेना असंभव है। यह अनदेखा मित्र, मेरा परम हितैषी है। जानता है कि भगवान मगध देश में विहार कर रहे हैं। अतः वह स्वयं गृहस्थ रहते हुए भी उनके सान्निध्य का दीर्घकालीन लाभ ले सकता है। परंतु भगवान मध्यदेश छोड़ कर इतनी दूर विहार करने आयेंगे नहीं। अतः मैं उनके सान्निध्य से वंचित रह जाऊंगा। इसीलिए उसने मुझे गृह त्याग कर उनके समीप रहने के लिए प्रोत्साहित किया है। मंत्रियो, मेरे मित्र के प्रति मिथ्या संदेह कर दोष के भागी न बनो। वह मेरा कल्याणचाहने वाला सन्मित्र है।

बुद्धुप्पादो दुल्लभो लोकस्मिं; राज अमात्यों, संसार में बुद्ध का उत्पन्न होना सचमुच दुर्लभ है। मेरे और मेरे जैसे अनेकों के सौभाग्य से यह दुर्लभता सुलभ हुई है। मुझे उनकी शरण जाने दो। अनेक जन्मों में मुक्ति की खोज में मैं व्यर्थ भटका हूं। अब इसे प्राप्त करने का सुअवसर आया है। मुझे इस लाभ से वंचित करने का वृथा प्रयत्न मत करो।

यों बहुत प्रकार से समझाने पर भी लोग नहीं माने। रोते-बिलखते, उसके पीछे चलते ही गये। तब पुक्कुसाति ने दृढ़ता का कदम उठाया। उसने अपने दंड से मार्ग पर एक रेखा खींच दी और कहा –मैंने गृही जीवन का त्याग कर दिया है। परंतु अब भी तुम मुझे अपना राजा मानते हो तो सुनो, यह राजाज्ञा है। कोई इस सीमा का उल्लंघन न करे।

लोग राजा पुक्कुसाति के इस दृढ़ निश्चय को देख कर हताश हुए और राजाज्ञा को नमस्कार कर, रोते-बिलखते नगर लौट गये। गृहत्यागी श्रमण पुक्कुसाति गंधार से मगध की ओर जाने वाले महापंथ पर पैदल चल पड़ा।

तक्षशिला से राजगीर का रास्ता बहुत लंबा था। पर भूतपूर्व गंधार नरेश अब एक सामान्य भिक्षु के रूप में सुदृढ़ निश्चय और सबल कदमों से चला जा रहा था। – "भगवान बुद्ध अपने हाथों अपने केश काट कर काषाय वस्त्र धारण करके चले, तो अकेले ही सत्यान्वेषण की चारिका पर निकले थे। मुझे उन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलना है। मैं भी अकेला विचरण करूंगा। उन्होंने पांव में पनही भी नहीं पहनी थी। मैं भी नंगे पांव यात्रा करूंगा। उन्होंने किसी वाहन का प्रयोग नहीं किया था। मैं भी किसी वाहन का प्रयोग नहीं करूंगा। उन्होंने सिर पर पत्तों के छाते का भी प्रयोग नहीं किया था। मैं भी खुले सिर ही यात्रा करूंगा। उन्होंने बिना मांगे जो मिले, उसी से यात्रा की थी। मैं भी अदिन्नादान से विरत रह कर यात्रा करूंगा। दातून के लिए किसी पेड़ की डाली भी स्वयं नहीं तोड़ूंगा। किसी जलाशय से मुँह धोने के लिए पानी भी स्वयं नहीं ग्रहण करूंगा। कोई न दे तो भोजन भी नहीं ग्रहण करूंगा।"

इन दृढ़ व्रतों का अटूट संकल्प धारण कर भिक्षु पुक्कुसाति कदम-कदम आगे बढ़ने लगा। तक्षशिला से राजगीर की यात्रा लंबी ही नहीं, दुर्गम भी है। राजमहलों की सुख-सुविधा और वैभव-विलास में जन्मा-पला पुक्कुसाति खुरदरी कड़ी धरती पर नंगे पांव चल रहा है। पांव में छाले पड़ गये हैं। चलते-चलते छाले फूट गये हैं। घावों में पीब पड़ गयी है। पीप बहने लगी है। पैदल चलने का श्रम तो है ही। इन फोड़ों और फफोलों की पीड़ा भी कम तीव्र नहीं है।

आगे-आगे व्यापारियों का एक कारवां चल रहा है। पीछे-पीछे पुक्कुसाति दृढ़ कदमों से पैदल चल रहा है। सामने चल रही सैंकड़ों बैलगाड़ियों पर क्रय-विक्रयक का सामान लदा है। साथ-साथ कुछ-एक आलीशान रथ-नुमा बैलगाड़ियां चल रही हैं, जो कारवां के मालिक साहूकारों के सोने-बैठने और आराम करने के लिए हैं। इनमें झालर वाले आरामदेह मोटे गद्दे, तकिये और मसनद लगे हैं। एक-एक गाड़ी को दो-दो श्वेतवर्णी स्थूलोदर विशाल वृषभ खींच रहे हैं। इनके पेट की लटक न धरती को छूती-सी लगती है। बड़े-बड़े सींग वाले सुंदर चेहरे हैं इनके। सींगों को नयनाभिराम रंगों से रँगा है। गले में

एक-एक घंटी बँधी है। प्रत्येक बैल की पीठ पर खूबसूरत कसीदेकी कढ़ाई की हुई रंग-बिरंगी खोल लगी है, जिसमें नन्हीं-नन्हीं घंटियों की झालर झूल रही है। गाड़ी के चक्कों के आरों पर घुंघरू बँधे हैं। प्रत्येक रथ पर जुते हुए दोनों बैल एक साथ अपना सिर हिलाते और झूमते हुए गाड़ी खैंचते हैं तो इन घंटे-घंटियों और घुँघरुओं का समवेत स्वर पैदा होता है। यह रुनझुन स्वर बड़ा चित्ताकर्षक है, परंतु पीछे-पीछे चलते भिक्षु का ध्यान इन पर नहीं जाता। वह नजर नीची किये हुए अपनी श्रमसाध्य यात्रा पैदल पूरी कर रहा है।

सूर्यास्त होने पर कारवां कहीं रुकता है। मालिकों के लिए खूबसूरत आरामदेह, अन्यों के लिए साधारण तंबू तान दिये जाते हैं, जिनमें वे रात्रि-विश्राम करते हैं। परंतु भिक्षु उनके समीप भी नहीं जाता। कुछ दूरी पर किसी पेड़ के नीचे पालथी मार कर बैठ जाता है। न घाव भरे पांव धोने के लिए पानी है। न दुखती पीठ सहलाने का कोई साधन है। परंतु आनापान का ध्यान करते हुए शीघ्र ही उपचार से अर्पणा समाधि की ओर बढ़ कर पहले से चौथे ध्यान की समापत्ति में समाहित हो जाता है। रात भर ध्यान में लीन रह कर शरीर की सारी हरारत, थकावट दूर कर लेता है। दूसरे दिन तरोताजा हो, यात्रा के लिए फिर तैयार हो जाता है।

कारवां के लोग सुबह-सुबह का नाश्ता कर चुकने पर बचा-खुचा भोजन तथा कुछ जूठन भिक्षु के भिक्षापात्र में डाल देते हैं। भोजन कभी अध-पका होता है, कभी बहुत पका। कभी रूखा होता है, कभी गीला। कभी अलोना होता है, कभी बहुलोना। गृहत्यागी राजसी भिक्षु के भिक्षा पात्र में जो पड़ जाय, उसे ही अमृत-सदृश स्वादिष्ट मान कर सहर्ष ग्रहण कर लेता है और उसी एक आहार से दिन भर की यात्रा करता है।

कारवांके श्रेष्ठियों को यदि मालूम हो जाय कि यह जो फटेहाल भिखारी पीछे-पीछे चल रहा है, वह स्वयं गंधारनरेश पुक्कुसाति है, जिसकी कृपा से हमें तक्षशिला में आयात-चुंगी की छूट मिली और हमारा मुनाफा कई गुना बढ़ा, तो श्रद्धा और कृतज्ञता से विभोर होकर उसके लिए यात्रा की वह सारी सुविधाएं कर देते, जो कि उन्हें अपने लिए उपलब्ध थीं। परंतु पुक्कुसाति को यह अभीष्ट नहीं था। उसे एक श्रमण का श्रमसाध्य जीवन श्रेष्ठतर दिखता था। इस कष्ट में उसे अतीव मानसिक तुष्टि और प्रसन्नता मिलती थी। इसी प्रसन्नता में उसने लगभग १९२ योजन की लंबी यात्रा पूरी की।

रास्ते में कारवां श्रावस्ती नगर में से होकर गुजरा। नगर के बाहर निकलने पर जेतवन विहार के सामने से गुजरा। पुक्कुसाति ने सुना यह बुद्ध का विहार है। परंतु उसने सोचा अनेक लोग बुद्ध होने का दावा करते हैं। मुझे उनसे सरोकार नहीं। मेरे कल्याणमित्र बिंबिसार ने जिन भगवान गौतमबुद्ध के बारे में लिखा है, मेरे लिए तो वही बुद्ध हैं और वह तो मगधदेशीय राजनगरी राजगीर में मिलेंगे। इसी विचार से उत्साहित हो, उसने श्रावस्ती से राजगीर की पैंतालीस योजन की यात्रा पूरी की।

जब राजगीर पहुँचा तो सूरज ढल चुका था और राज्य के कठोर नियमानुसार नगरद्वार बंद कर दिये गये थे। प्रातः-पूर्व किसी के लिए नहीं खुल सकते थे। अतः उसने राजनगर के बाहर विश्राम करने का निर्णय किया। वहीं यह सूचना मिली कि जिन भगवान सम्यक संबुद्ध से मिलने यहां आया है, वह इस समय श्रावस्ती के जेतवन में विहार कर रहे हैं। अतः उसने निर्णय किया कि एक रात यहीं बिता कर कल भगवान के दर्शन के लिए पुनः वापसी यात्रा पर निकल पड़ेगा।

(क्रमशः अगले अंक में)

कल्याण मित्र,

स. ना. गो.

(नये साधकों के लाभार्थ 'जागे पावन प्रेरणा' पुस्तक से साभार उद्धृत)

बंगलादेश में विपश्यना शिविर संपन्न

ढाका से १३० कि.मी. दूर कोमिला जिले के बरईगांव में स्थित कनकचैतविहार में विपश्यना के दो दस-दिवसीय शिविर २ से १२ एवं १७ से २८ दिसंबर तक संपन्न हुए, जिनसे लगभग ७० लोग लाभान्वित हुए और बच्चों के भी एक-दिवसीय दो शिविर १३ व २८ दिसंबर को लगे, जिनमें ४५ बच्चों ने धर्मलाभ प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त १५ दिसंबर को पुराने साधकों के लिए एक दिवसीय शिविर लगा, जिसमें ३ भिक्षुओं सहित १७ लोगों ने अपनी साधना को पुष्टता प्रदान की। सामूहिक साधना और दैनिक साधना को नियमित करने पर बल दिया गया।

'धम्म केतन' केंद्र पर पहला शिविर संपन्न

केरल के निर्माणाधीन विपश्यना केंद्र 'धम्म केतन' पर विपश्यना का पहला शिविर २१-१२ से १-१-२००७ तक संपन्न हुआ। इसमें २० पुरुष एवं ७ महिलाओं ने धर्मलाभ प्राप्त किया। इस फार्म-हाऊस की जमीन पर कुछ भवन पहले से बने हुए थे। उनमें कुछ सुधार करके आवश्यक शौचालय, स्नानागार आदि बनाये गये। एक भवन को सुधार कर रसोईघर और भोजनालय का रूप दिया गया और अस्थाई (फूस, चटाई व स्थानीय लकड़ी से निर्मित) साधना-कक्ष व अन्य पुरुष-निवास बनाये गये। इस प्रकार शिविर लगने का काम आरंभ हो गया। केंद्र-निर्माण के प्रथम चरण में १०० साधकों के लिए आवश्यक रेखाचित्र बना लिये गये हैं और निर्माण कार्य भी साथ-साथ चलता रहेगा।

इससे अधिक अधिक लोग धर्मलाभ ले सकें ! सबका मंगल हो!

मंगल-मृत्यु

☹ अमेरिका की सहायक आचार्या **श्रीमती टेरी कर** के बारे में उसके पति मि. पीटर कर ने लिखा है कि टेरी की पदोन्नति (प्रोमोशन) हुई है। कैंसरग्रस्त टेरी का अंतिम दिन बहुत शांत रहा। उस दिन हम कई साधकों ने मिल कर उसके पास कई बार सामूहिक साधना किये। पूज्य गुरुदेव की टेप चलती रही। वह साधना करती हुई बहुत शांत रही और धीरे-धीरे अंतिम सांस छोड़ी, जिसे देख कर हमें विश्वास हो गया कि यह निश्चित ही उसकी सद्गति का द्योतक है।

धर्म कितना महान है यह हम सोच भी नहीं सकते। जब भी उससे बिछुड़ने का गम जोर पकड़ता है, हमें पूज्य गोयन्काजी के वचन याद आते हैं –अनिच्च, अनिच्च और 'अनिच्च' की अनुभूति होते ही मन तुरंत शांत हो जाता है। इससे बड़ी जीवन जीने की कला भला और क्या हो सकती है! हमें तो हर क्षण उसे मंगल मैत्री ही भेजनी चाहिए, हमारे दुःख की तरंगें भला उसे क्यों भेजें! ऐसा विचार आते ही जैसे हमने धुँए के गुब्बारे को दबा दिया और वह फूट गया। सारा तनाव दूर हो जाता है। धन्य है धर्म और धन्य हैं आप, हमारे धर्मदाता! विपश्यना में पूरे विश्व का मंगल समाया हुआ है। आवश्यकता है इसे सही ढंग से अपनाने की। सब का मंगल हो! –पीटर कर, अमेरिका.

☹ नागपुर के सहायक आचार्य **श्री नाथूजी बंबार्डे**, पिछले कुछ दिनों से अस्वस्थ थे। उन्होंने १७ जनवरी, २००७ को शरीर त्याग दिया। बढ़ी हुई उम्र के कारण ठीक से भोजन नहीं ग्रहण पा रहे थे परंतु मानसिक स्थिति सदैव शांत बनी रही। विपश्यना में पक कर १९९६ में वे सहायक आचार्य नियुक्त हुए और अपनी सेवाओं से अनेकों का मंगल किया।

इस पुण्यफल से उनका तथा उनके परिवार का मंगल हो!

Postal Regn. No. LII/REN./RNP-46/2006-08

Postal Licence No. LII/RNP-WPP-03

नए उत्तरदायित्व

वरिष्ठ सहायक आचार्य

Mr. Gregory & Mrs. Irene Wong, *Hong Kong*

नवनियुक्तियां

सहायक आचार्य

Dr. Maung Maung Aye & Daw Yi Yi Win, *Myanmar*
U Thein Htwe, *Myanmar*
Mr. Kornelius Hug & Mrs. Eva Knopfel, *Switzerland*
Mr. Gerald Roessner & Mrs. Monika Fischer, *Germany*

बाल-शिविर शिक्षक

Ms. Nadie Muditha Samarakkody, *Sri Lanka*
Mrs. Pan, Ling Na, *Taiwan*
Ms. Even Hu, *Taiwan*

नूतन वर्षाभिनंदन

हर वर्ष की तरह अनेक साधकों की ओर से नव वर्ष के अभिनंदन-पत्र मिले हैं। एक-एक को नव वर्ष की मंगल कामना प्रेषित कर पाने का अवसर नहीं मिल पाया, इसलिए 'विपश्यना' पत्रिका के माध्यम से उन्हें तथा अन्य सभी साधक-साधिकाओं को मेरी असीम मंगल मैत्री पहुँचे! नव वर्ष सबके मानस में धर्म की नवज्योत प्रज्वलित करे! दिनोंदिन प्रज्ञा पुष्टतर होती जाय! धर्म धारण करने का मंगलकारी फल प्रभूत हो! प्रभावशाली हो! सबका मंगल हो!

मंगल मित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

दोहे धर्म के

केश शीश के काट कर, दाढ़ी मूंछ मुड़ाय।
लकुटी भिक्षा-पात्र ले, पहने वस्त्र कषाय॥

चला छोड़कर राज्य-सुख, भिक्षुक बना नरेश।
पग पनही सिर छत्र को, त्याग चला दरवेश॥

बिन मांगे जो भी मिले, उससे कर संतोष।
रूखी सूखी खाय कर, रहा देह को पोस॥

पथ कंकर-कंटक भरा, चलता नंगे पांव।
फूट फफोले पांव में, भरे पीप से घाव॥

कष्ट न बाधक बन सकें, रोक न सके थकान।
लगन एक मन में लगी, मिलें बुद्ध भगवान॥

मिलें बुद्ध भगवान तो, मिले धरम का ज्ञान।
निर्मल मिले विपश्यना, मिले मोक्ष निर्वाण॥

केमिटो टेक्नोलॉजीज (प्रा.) लिमिटेड
८, मोहता भवन, ई-मोजेस रोड, वरली, मुंबई-४०० ०१८
फोन: २४९३ ८८९३, फैक्स: २४९३ ६१६६
Email: arun@chemito.net
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

सुत नारी परिजन स्वजन, भर्‌यो पुर्‌यो परिवार।
हो असंग तज कर चल्यो, ज्यूं त्यागै अंगार॥

दास दासियां स्यूं भर्‌या, महल-माळिया त्याग।
चल्यो सच्च की खोज मँह, नरपुंगव बड़भाग॥

कठै क सुवरण थाळ मँह, सटरस ब्यंजन भोग।
कठै क भिच्छा पात्र मँह, जूठन को संजोग॥

हाथी घोड़ा पालखी, सुखद सज्योडा यान।
कठै क पैदल चालणो, कंटक-पथ अभियान॥

पांव फफोळा स्यूं भर्‌या, छुटै न मुख मुसकान।
इसी लगन लागी हियै, हुवै न रंच थकान॥

पग पग चाल्यो कठण पथ, भर्‌यो हियै मँह मोद।
एक लक्ख सम्बुद्ध स्यूं, मिलै धरम को बोध॥

आकांक्षा इंटरप्राईसेस
ई - १/८२, अरेरा कालोनी, भोपाल (म. प्र.) - ४६२०१६
फोन: (०७५५) २४६१२४३, २४६२३५१; फैक्स: (०७५५) २४६८१९७
Email: aeent@airtelbroadband.in
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) २४४०८६, २४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५५०, माघ पूर्णिमा, २ फरवरी, २००७**

वार्षिक शुल्क रु. **३०/-,** विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. **५००/-**, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६**/७१. Regn. No. LII/REN./RNP-46/2006-08

Licenced to post **without Prepayment of postage** -- Licence number-- LII/RNP-WPP-03
Posting day- **Purnima of Every Month,** Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
फोन : (०२५५३) २४४०७६, २४४०८६
फैक्स : (०२५५३) २४४१७६
e-mail: info@giri.dhamma.org
Website: www.vri.dhamma.org